© 2018 IJSRSET | Volume 4, Issue 6, January-February-2018
Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099 | Page No : 236-239

संस्कृतकाव्यशात्र में रसविमर्श

श्वेता अवस्थी
(शोधच्छात्रा)
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान लखनऊ परिसर, लखनऊ

शोधलेखसार- प्राचीन काल से ही संस्कृत नाट्य जगत् एवं काव्य जगत् में रस की अत्यधिक प्रतिष्ठा है।रस के विना साहित्य में शोभा नही, काव्य में माधुर्य नही और वाक्य में प्राण नही।तैत्तरीयोपनिषद् के **''रसो वै सः''।''रस ह्येवायं लब्धानन्दी भवति।** इत्यादि ब्रह्म के वर्णन से प्रतीत होता है कि रस का अर्थ ब्रह्म और ब्रह्म का अर्थ रस है। संस्कृतकाव्यशास्त्र में रस विवेचन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। रस सम्प्रदाय और ध्वनि सम्प्रदाय ने तो रस को काव्यात्मतत्त्व स्वीकार किया है। अलङकार, रीति आदि अन्य सम्प्रदायों के सूक्ष्म अध्ययन से ज्ञात होता है कि सभी आचार्यों ने किसी न किसी रूप में रस को मान्यता प्रदान की है। भरत मुनि के द्वारा **नाट्यशास्त्र** में कहा गया है–

जग्राह नाट्यं ऋग्वेदात्,सामभ्यो गीतमेव च।

यजुर्वेदादभिनयं, रसानथर्वणादपि॥

आचार्य मम्मट के अनुसार रस की परिभाषा– **कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च रत्यादेःस्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः, विभाव, अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः, व्यक्तः स तैर्विभावीद्यै स्थायीभावो रसःस्मृतः।** अर्थात् लोक में रत्यादि स्थायी भावों के जो कारण,कार्य तथा सहकारी कारण हैं,वे नाट्य और काव्य में प्रयुक्त होते हैं। वो विभाव अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव कहे जाते हैं।उन विभाव आदि के द्वारा व्यक्त किया गया वह रत्यादि स्थायी भाव रस है। रस के विना काव्यशास्त्र समुचित रूप से पल्लवित पुष्पित नही हो सकता।

मुख्य शब्द- काव्य, रस, नाट्यशास्त्र, विभाव, अनुभाव, व्यभिचारीभाव।

प्राचीन काल से ही संस्कृत नाट्य जगत् एवं काव्य जगत् में रस की अत्यधिक प्रतिष्ठा है। भरत मुनि के द्वारा **नाट्यशास्त्र** में कहा गया है–

जग्राह नाट्यं ऋग्वेदात्,सामभ्यो गीतमेव च।

यजुर्वेदादभिनयं,रसानथर्वणादपि॥[1]

रसवादि आचार्य ने रस को काव्य की आत्मा माना है,आचार्य भरत मुनि ने रस के महत्व में लिखा है,

© 2018 IJSRSET | Volume 4, Issue 6, January-February-2018
Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099 | Page No : 236-239

नहि रसादृते कश्चिदर्थ:प्रवर्तते।।[2]

कविराज जगन्नाथ ने रस को काव्य में सर्वस्व मानते है।रस निरूपण के प्रसंग मे कहा है सहृदयों के हृदय में विद्यमान वासनारूपी स्थाई भाव एवं विभाव अनुभाव संचारी भाव अभिव्यक्त रस के रूप में होता है।

रसो वै स: रसं ह्येवायं लब्धानन्दी भवति।।[3]

यह वाक्य तैत्तरियोपनिषद् के सप्तम अनुवाक से लिया गया है, जिसका अर्थ है जो भी सुकृत है और जीवात्मा इसी रस को प्राप्त करके आनन्द से युक्त होता है, अग्नि पुराण से काव्य में प्राप्त रस को सर्वाधिक महत्त्व देते हुए,उसे काव्य का प्राणतत्त्व माना गया है। विष्णु महापुराण में भी रस की विशिष्ट व्याख्या प्राप्त होती है, अत:रस प्राचीन काल से स्वत:सिद्ध है। आचार्य भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के षष्ठाध्याय में रस की वृहद् व्याख्या की है।

विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगात् रसनिष्पत्ति: ।।[4]

विभाव, अनुभाव, व्यभिचारि भाव के संयोग से रस निष्पत्ति होती है। आचार्य मम्मट के अनुसार रस की परिभाषा– **कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च रत्यादे:स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययो:,विभाव,अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यबिचारिण:,व्यक्त: स तैर्विभावीद्यै स्थायीभावो रस:स्मृत:।**[5] अर्थात् लोक में रत्यादि स्थायी भावों के जो कारण,कार्य तथा सहकारी कारण हैं,वे नाट्य और काव्य में प्रयुक्त होते हैं।वो विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव कहे जाते हैं।उन विभाव आदि के द्वारा व्यक्त किया गया वह रत्यादि स्थायी भाव रस है। काव्य में आखिर विभावादि होते क्या हैं– वि+भू+ घञ् के योग से विभाव पद निष्पन्न हुआ है,

रत्याद्युद्बोषको लोके विभाव नाट्यकाव्ययो: ।।[6]

लोक में जो पदार्थ लौकिक रति आदि भावों के उद्बोधक होते हैं, वे ही काव्य और नाटकादि विभाव कहलाते हैं। आलम्बन एवं उद्दीपन के प्रकार से दो प्रकार का है, जिसको आलम्बन करके रसोत्पत्ति होती है, वह आलम्बन है। उदाहरण के लिए सीता को देखकर राम के मन में राम को देखकर सीता के मन में रतिभाव उद्बुद्ध होता है, उन दोनों को देखकर सामाजिक के मन में शृङ्गार रस की अभिव्यक्ति होती है, शृङ्गार रस में आलम्बन विभाव है।

ज्ञायमानतया तत्र विभावो भावोवोषकृत्।। [7]

विभाव के दो भेद हैं–

आलम्बनोदीपनाख्यो तस्य भेदावुभौ स्मृतौ।।[8]

अनुभाव–अनु+भू+घञ् के योग से अनुभाव शब्द बनता है, जिसकी व्युत्पत्ति अनु पश्चात् भवन्ति इति अनुभाव:।

उद्बुद्धं कारणै: स्वैर्बहिर्भावं,प्रकाशयन् लोके ।

य: कार्यरूप:सोनुभाव:काव्यनाट्ययो:।।[9]

अनुभाव रसानुभूति के कार्यरूप होता है, वे रसानुभूति के परवर्ती के होने बाले भाव हैं।

© 2018 IJSRSET | Volume 4, Issue 6, January-February-2018
Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099 | Page No : 236-239

व्यभिचारिभाव उद्बुद्ध हुए स्थायी भावों की पुष्टि तथा उपचय में सहकारि होने से भाव व्यभिचारी कहलाते हैं। भरतमुनि के अनुसार रसों के नाना रूपों से विचरण करने वाले रसों को पुष्ट कर उन्हे आस्वाद बनाने बाले भाव व्यभिचारी भाव कहलाते हैं। साहित्यदर्पण के अनुसार व्यभिचारीभाव–

विशेषादाभिमुख्येन चरणाद्व्यभिचारिण:।

यिन्युन्मग्ननिर्मग्नास्त्रयस्त्रिंशत् तद्विधा:।।[10]

रस ही काव्य की आत्मा है ऐसा उद्घोषित करते हुए कविराज विश्वनाथकहते हैं कि

वाक्यं रसात्मकं काव्यम्[11]

रस निरूपण प्रसंग के अवसर में पण्डितराज जगन्नाथ लिखते हैं कि सहृदयों के हृदय में विद्यमान वासनारूपी स्थाईभाव ही विभाव अनुभाव सञ्चारीभाव के साथ अभिव्यक्त होते हुए रस रूप में परिणित होता है। साहित्यदर्पणकार कहते हैं कि–

विभावेनाविभावेन व्यक्त: सञ्चारिणा तथा।

रसतामेति रत्यादि: स्थायिभाव:सचेतसाम्।।[12]

रस सिद्धान्त के प्रमुख चार सिद्धान्त प्रसिद्ध हैं।

उत्पत्तिवाद- नौवीं शताब्दी के आचार्य भट्टलोल्लट का रससूत्र विषयक मत उत्पत्तिवाद कहलाता है. इनके अनुसार प्रथम विभावादि का स्थायीभाव के साथ संयोग होता है, तदनन्तर रस की निष्पत्ति होती है, इन्होने संयोग पद के तीन अर्थ किए,उनके अनुसार संयोग पद का अर्थ उत्पाद उत्पादक भाव संबन्ध तथा निष्पत्ति पद का अर्थ उत्पत्ति है।

अनुमितिवाद– नैयायिकों शङ्कुक ने रस की अनुभूति को अनुमान का विषय प्रतिपादित किया है, उन्होने संयोग पद का अर्थ अनुमाप्य अनुमापक सम्बन्ध तथा निष्पत्ति का अर्थ अनुमिति किया है.उनके मतानुसार रस अनुकर्ता आदि में अनुमेय होता है,तथा सामाजिक अपने हृदय की वासनानुसार उसका आस्वादन करते हैं। विश्वनाथ के रसविवेचना के ऊपर भट्टनायक और अभिनवगुप्त का प्रभाव परिलक्षित होता है।

भुक्तिवाद- भुक्तिवाद के प्रवर्तक सांख्यमतानुयायी भट्टनायक के मत मे वास्तविक रसानुभूति सामाजिकों में होती है।इनका मत है कि न तो तटस्थ अर्थात् उदासीन (नट या नायक) के सम्बन्ध से और न हि आत्मगतरूप से सामाजिक में रस कि प्रतीति होती है न उत्पत्ति होती है न हि अभिव्यक्ति होती है, अपितु काव्य तथा नाटक में अभिधा से भिन्न एक भावकत्व नामक व्यापार होता है। जिसका स्वरूप विभावादि का साधारणीकरण कहलाता है।

अभिव्यक्तिवाद– इस सूत्र के सर्वश्रेष्ठ व्याख्याकार अनिनवगुप्त का रससूत्र विषयक मत अभिव्यक्तिवाद है। इन्होने अपने पूर्ववर्ती अलङ्कारशास्त्र के प्रमुख ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन के आधार पर अपने अभिव्यक्तिवाद का प्रतिपादन किया है,इसलिए यह मत आलङ्कारिक मत है। इन्होने रससूत्र संयोग पद का सम्बन्ध अभिव्यङ्ग्य–अभिव्यञ्जक सम्बन्ध है। अद्वैत सिद्धान्त के आत्मानन्द के साथ आनन्दवर्धन के व्यञ्जना सिद्धीन्त का सहज समन्वय है।

© 2018 IJSRSET | Volume 4, Issue 6, January-February-2018
Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099 | Page No : 236-239

अनिनव गुप्त ने रस को व्यङ्ग्य मानकर व्यञ्जना का विषय माना है, न लक्षणा के विषय में है,वह तो व्यङ्ग्य ही हो सकता है।इसके अनुसार सभी मनुष्य रसास्वाद के अधिकारी नही हैं, इन्होने रस को अलौकिक माना है।अनिभवगुप्त के अनुसार सामाजिकों के हृदय में रत्यादि स्थायीभाव वासना के रूप में वर्तमान में रहते हैं।वासना के रूप में स्थित स्थायीभाव ही विभावादिकों के सम्योग से व्यञ्जनावृत्ति का विभावना व्यापार के द्वारा अभिव्यक्त होकर रस रूप में परिणत होते हैं। अत:काव्यशास्त्र के उत्कर्ष में रस की प्रमुख भूमिका है।

सन्दर्भग्रन्थसूची-

1.नाट्यशास्त्रम्–1.17

2.नाट्यशास्त्रम्–6.33

3.रसगङ्गाधर:–3.10

4.नाट्यशास्त्रम्–6.34 वृत्ति:

5.काव्यप्रकाश:–4.27

6.साहित्यदर्पण:–3.29

7.दशरूपकम्–4.2

8.साहित्यदर्पण:–3.29

9.साहित्यदर्पण:–3.132/133

10.साहित्यदर्पण:–3.10

11.साहित्यदर्पण:–1.3

12.साहित्यदर्पण:–3.1